अमृतलाल नागर के उपन्यासों में भारतीय समाज और संस्कृतिः एक मूल्यांकन

पुष्प लता कुमारी, शोध छात्रा, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

यह सर्वविदित है कि 'साहित्य समाज का दर्पण' है। इसमें समाज का प्रतिबिंब झलकता है। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, रिपोतार्ज, संस्मरण, जीवनी इत्यादि विविध विधाओं को अपने भीतर संजोए हुए साहित्य अपने वृहदाकार रुप में गतिशील है। आज 'साहित्य' शब्द का प्रयोग बड़े ही व्यापक अर्थ में किया जाने लगा है। किसी भी खास विषय की समस्त पुस्तकें उस विषय का साहित्य कहलाती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "यह संस्कृत के 'सहित' शब्द से बना है जिसका अर्थ है 'साथ–साथ'। 'साहित्य' शब्द का अर्थ इसलिए 'साथ–साथ रहने का भाव' हुआ।"[१] साहित्य के इसी भाव–बोध के कारण ही इसका स्वरूप विस्तृत एवं व्यापक है और साथ ही परिवर्तनशील एवं गत्यात्मक भी।

साहित्य और समाज एक दूसरे के आश्रित एवं पूरक हैं। साहित्य का आधार संपूर्ण मानव–जीवन है, जिस पर इसकी नींव टीकी है। प्रेमचंद के अनुसार, ''साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो।''[२] उपन्यास मानव–जीवन का एक महत्वपूर्ण साहित्यांग है जो इस परिपाटी पर खरी उतरती है। साहित्य में उस मानव–समाज की अभिव्यक्ति होती है जिसे स्वयं मानव ने देखा है, सुना है, भोगा है, अनुभव किया है और समझा है। इस दृष्टि से देखें तो नागर जी प्रेमचंदोत्तर परंपरा के सफल उपन्यासकार ठहरते हैं, जिनकी रचनाओं में उपरोक्त सभी गुण मूर्तिमान होते हैं।

साहित्य, भाषा, समाज और संस्कृति की धरोहर है। साहित्य में किसी युग विशेष की सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन की झाँकी देखने को मिलती है। किसी भी साहित्य से हम उस युग के समाज और संस्कृति का अनुमान लगा सकते हैं। जिस देश का साहित्य जितना ही अधिक समृद्धशाली एवं समुन्नत होगा वहाँ का समाज भी उतना ही अधिक विकासशील एवं उन्नतशील होगा। वस्तुतः समाज ही साहित्य को समृद्धशाली और समुन्नत बनाता है। जहाँ का जैसा समाज होगा, साहित्य भी वैसा ही होगा। वास्तव में वही साहित्य मूल्यवान होता है, जो समाज को सकारात्मक दृष्टि से देखता है। साहित्य में निहित जन–चेतना एवं जन–कल्याण की भावना, आदर्श समाज एवं सुसंस्कृत देश की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योग देता है।

अमृतलाल नागर आधुनिक साहित्य जगत् के ख्यातिप्राप्त उपन्यासकारों में गिने जाते हैं। वे समाज और संस्कृति से जुड़े हुए इंसान थे। भारतीय समाज और संस्कृति की गहरी परख होने के कारण उनकी रचनाओं में इसकी घनी जड़ें विद्यमान हैं। उनका उपन्यास समाज और संस्कृति की अक्षय संपदा है जिसे भूलकर भी भुलाया नहीं जा सकता। इसे सुरक्षित रखना हमारा कर्त्तव्य है। सामाजिक होने के नाते साहित्यकार का भी समाज के प्रति कुछ दायित्व होता है जिसे वह अपनी कलम द्वारा आवाज देता है। साहित्य और साहित्यकार को सदैव प्रगतिशील होना चाहिए, अन्यथा वे समय के

साथ हो रहे सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंधी नवीन परिवर्त्तनों के प्रति पाठकों को रु–ब–रु एवं सचेत कराने में समर्थ नहीं हो पाएंगे। नागर जी के अधिकांश उपन्यास समाजिक हैं जिनमें प्रेमचंद की तरह ही मानवीय मूल्यबोध दृष्टिगत होते हैं। परन्तु, प्रेमचंद की अपेक्षा नागर जी का उपन्यास सांस्कृतिक चेतना को ले अधिक उद्यत था। केदारनाथ अग्रवाल उन्हें अपने युग के हिन्दी गद्य का महान् उपन्यासकार मानते हैं। वे कहते हैं, "प्रेमचंद का उपन्यास प्रवाह मानवीय बोध का था तो जरूर लेकिन वह देश की सांस्कृतिक चेतना की विरासत से उद्यत नहीं था। यह कमी थी जिसको नागर जी ने अपने इन उपन्यासों को लिखकर दूर किया।"[३] 'बूंद और समुद्र', 'अमृत और विष', 'मानस का हंस', 'खंजन नयन', 'एकदा नैमिषराण्ये' इत्यादि उपन्यासों में मुख्य रूप से भारतीय समाज के सांस्कृतिक एवं धार्मिक मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है।

मूल्यांकन पक्ष पर आने से पूर्व हमें भारतीय समाज एवं संस्कृति से जुड़ी सामान्य जानकारी आवश्यक होगी तभी हम भली पूर्वक इसे समझ पाएंगे और नागर जी के उपन्यासों के संदर्भ में भी मूल्यांकित कर सकने में समर्थ हो पाएंगे। समाज और संस्कृति की आपस में घनिष्ठ मित्रता है। समाज में व्यक्ति की महत्ता होती है क्योंकि वह व्यक्ति और परिवार से मिलकर बनता है और संस्कृति के मूल में उसके जीवन–यापन या जीवन व्यवस्था की पद्धति होती है। व्याकरणिक दृष्टि से संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा की 'संस्कृ' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय लगाने से बनता है जो अच्छी स्थिति का बोधक है। एक अन्य व्याख्या के अनुसार संस्कृति शब्द संस्कार से बना है जिसका अर्थ है 'शुद्धि की क्रिया' या 'परिष्कार'। यहाँ इसका तात्पर्य पवित्रता से नहीं बल्कि सामाजिकता से है। संस्कृति में 'सत्य, शिव और सुन्दर' का सामन्जस्य होता है। व्यक्ति को सामाजिक प्राणी बनाने में जिन भी तत्त्वों या मूल्यों का योगदान रहता है, वे सभी तत्त्व संस्कृति कहलाती हैं। संस्कृति के निर्माण में भौतिक और अभौतिक सभी कुछ आ जाते है। इसमें देश और समाज–संरचना के आधारभूत तत्त्व जिनमें भूगोल, इतिहास, पुराण, धर्म, कला–कौशल, रीति–नीति, पर्व–त्योहार, पशु–पक्षी, भाषा, वनस्पति, राजनीति, अर्थशास्त्र सभी कुछ समाहित हैं जो संस्कृति को व्याख्यायित करती है।

उपन्यास की शक्ति संस्कृति को पहचानने, समझने तथा उसे अभिव्यक्ति देने में है। नागर जी के उपन्यासों में आए तो भारतीय सांस्कृति की घनिष्ट पहचान ही उनकी सफलता एवं लोकप्रियता की द्योतक है। उनके उपन्यासों में भारतीय घर–परिवार (हिन्दू एवं मुस्लिम) की साज–सज्जा का वर्णन, बाजार एवं मोहल्ले की चहल–पहल का वर्णन, पर्व–त्योहार एवं शादी–ब्याह के संस्कार, पात्रों के वेश–भूषाओं का सटीक वर्णन, भाषिक संस्कृतियों का विविध तेवर के साथ प्रयोग, मंदिरों, चौक–चौराहों, बागों, महलों, सरायों, सड़कों का जीवन्त वर्णन, मानवीय संबंधों एवं उसके जटिल पक्षों का मार्मिक उद्घाटन दृष्टिगोचर होता है, जिसके लिए नागर जी जाने जाते हैं एवं पढ़े जाते हैं; उसका महत्त्व इस विशाल संस्कृति के उद्घाटन में निहित है। 'बूँद और समुद्र' उपन्यास का आरंभ ही भारतीय जन–जीवन के व्यस्तताओं से होता है, ''दोपहर की धूप छतों पर जाड़े के दरबार लगाए चारों ओर पसर रही है। औरतों का सीना–परोना चल रहा है, गेहूँ फटके जा रहे हैं, दालें बीनी जा रही हैं, साग बनारे जा रहे हैं; कहीं आराम भी हो रहा है। स्कूल न जानेवाले बच्चों की हुड़दंग मची है, पतंगें भी उड़ रही हैं। कहीं कोई पेंशनयाफ्ता आज्ञाकारी–कमासुत सन्तानों की तरह रक्षा और निश्चिन्तता देनेवाले धाम को सराहता हुआ, बुढ़ापे के शरीर पर चढ़े हुए ऊन और रुई के गिलाफ बेखौफ उतारकर हाथों से घुटने सहलाते हुए अपनी गठिया खोल रहा है; देर से रोटी खानेवाले घरों की छतों पर अब भी कोई–कोई सिर पर लोटे उँडेलते हुए हरगंगे कर रहे हैं। जागती दुनिया के फटखट–झनझन–धमधम करते, चढ़ते–उतरते,

क्रोध–ममता–खीझ–गम्भीरता और हँसी–मजाक से भरे हुए सतरंगे स्वर गूँज से सिमट गए हैं–गूँज अणु–अणु में व्याप रही है। कहीं से कोई एक भी स्वर का तार छू ले, आज की दुनिया गूँज उठती है।''[४] नागर जी भारतीय संस्कृति के हित चिन्तक हैं। वे समाज के हित के लिए इसे आवश्यक मानते हैं। परन्तु वर्तमान युग में संस्कृतिक मूल्यों के विघटन को देख वे चिन्तित हैं, ''एक तरफ जहाँ हमारी संस्कृति ने ये अजन्ता, एलोरा वगैरा जड़ पहाड़ों में चेतना भरी, वहीं किसी सिस्टम की खराबी से चेतन आदमी को जड़ पत्थर बना दिया। हमारे इतने अच्छे–अच्छे आदर्श समाज में एक जगह अपना सच्चा असर रखते हुए भी सिमट कर नई शक्ति नहीं बन पाते। वजह क्या है? व्यक्ति की इतनी सच्ची निष्ठा होने पर भी हमारा नेशनल कैरेक्टर कुछ भी नहीं?''[५]

नागर जी के उपन्यासों में भारतीय समाज की स्पष्ट छवि दृष्टिगोचर होती है, जिसमें राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं, स्त्री–पुरुष की नैतिकता संबंधी समस्याओं के साथ ही उनमें समाज कल्याण एवं नव–निर्माण की भावना भी निहित है। हमारा देश अनेक संस्कृतियों का देश है, जिनमें विभिन्न धर्म–संप्रदायों, भाव–विचारों एवं आस्था–अनास्था से जुड़े लोग रहते हैं। हमारे देश में संस्कृतियों की प्राचीन परम्परा रही है जो लंबे समय से चली आ रही है। यह मनुष्य को मनुष्य से जोड़ती है एवं दूसरों में जीने की प्रेरणा जगाती है। साहित्यकार अपनी कृतियों के माध्यम से संस्कृति के प्राचीन गौरव एवं मूल्यों को अक्षुण्ण रखता है। राष्ट्र, समाज अथवा मानव जाति के पतन के समय में वह उन गौरवशाली मूल्यों का गुणगाण करके अपनी कृतियों के माध्यम से सांस्कृतिक जागरण का आह्वान कर सकता है। अतः महादेवी वर्मा का यह कथन उचित प्रतीत होता है, ''यह कहना साहित्यकार का अपमान करना है कि वह जीवन के संघर्ष में साथ नहीं दे सकता। जो जीवन को आदर्श देते हैं, स्वप्न देते हैं, अनुभूति देते हैं वे तो जीवन के निरंतर साथी हैं ही, वे जीवन के मूल्यों की स्थापना भी करते हैं और उन मूल्यों की रक्षा के लिए जीवन की बाजी लगाने की प्रेरणा भी देते हैं।''[६]

हमारे देश में संस्कृतियों की प्राचीन परम्परा रही है। समय–समय पर अनेक जातियों एवं वंशों जिनमें – हुण, शक, कुषाण, अरब, तुर्क, पठान, मुगल, यहुदी, अंग्रेज इत्यादि के आगमन से हमारी संस्कृति का विकास हुआ। यह हमारी भारतीय संस्कृति की बहुत बड़ी विशेषता है कि इसने सभी संस्कृतियों को बड़ी उदारता के साथ खुद में समाहित कर लिया। धीरे–धीरे सभी संस्कृतियाँ भारतीय संस्कृति में एकाकार हो गई हैं और ऐसा लगता ही नहीं कि अन्य देशों की संस्कृतियाँ भी समाहित है। इस संबंध में नागर जी का 'एकदा नैमिषराण्ये' जो एक सांस्कृतिक उपन्यास है, महत्त्वपूर्ण ठहरता है। नागर जी ने नैमिष आंदोलन को वर्तमान भारतीय या हिन्दू संस्कृति का निर्माण करने वाला माना है जिसमें वेद, पुनर्जन्म, कर्मकाण्ड, उपासनावाद, ज्ञानमार्ग, अनेक विरोधी संस्कृतियों एवं अनेकता में एकता स्थापित करने वाली संस्कृतियों का उदय नैमिषराण्ये में ही हुआ। वे कहते हैं, ''भारतीय–संस्कृति का सब कुछ भारत देश में ही नहीं उपजा, बहुत कुछ का उद्‌गम स्रोत भारत के बाहर भी है। इसी तरह बाहर व़ालों ने भी अपनी संस्कृतियों में भारत के बहुत–से संस्कार ग्रहण किये हैं।''[७] एक अन्य कथन में वे कहते हैं, ''आर्य सभ्यता और संस्कृति केवल भारत की ही बपौती नहीं, वरन् उसका संबंध सोवियत यूनियन, मध्य–एशिया, मिस्र, ईराक और योरप के कतिपय भागों से भी है।''[८] अतः स्पष्ट है कि निश्चित ही भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता अन्य संस्कृतियों से भी प्रभावित हुई है जो इस उपन्यास के माध्यम से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' एवं 'अनेकता में एकता' की भावना को दर्शाती है। यही हमारी भारतीय संस्कृति की वास्तविक पहचान है।

'धर्म' को भी संस्कृति से अलग करके नहीं देखा जा सकता है क्योंकि हमारे सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यों का आधार धर्म ही है। समाज में धर्म का अपना विशिष्ट स्थान है जो संपूर्ण मानव जाति के लिए चिरन्तन आस्था का प्रतीक है और मानवीय भावनाओं के साथ जुड़ा हुआ है। 'अमृत और विष' में नागर जी जहाँ दो धर्मों और संस्कृतियों के समन्वय पर बल देते हैं, वहीं धर्मान्धता, अंधश्रद्धा–भक्ति और अंधविश्वासों की आड़ में शोषण एवं अत्याचार के खिलाफ भी हैं। लच्छू ऐसे धर्म और ईश्वर के प्रति अनास्था व्यक्त करता है, ''हमारा देश ईश्वर को बहुत मानता है। सबेरे से रात तक पवित्र नदियों में नहाता, पूजा करता और घण्टे–घड़ियाल ही बजाता रहता है। लेकिन वह ईश्वर आज तक हमारा कुछ भी भला न कर सका।''[६] यहाँ वे धर्म के खिलाफ नहीं हैं अपितु धर्म के साथ–साथ कर्म करने पर भी बल देते हैं। 'मानस का हंस' में भी 'तुलसी' का प्रयत्न सांस्कृतिक एकता को ही लक्ष्य बनाना था, ''मैं व्यक्ति की भीतर वाली सगुण–निर्गुण खण्डित आस्था को दशरथनन्दन राम की भक्ति से जोड़कर फिर खड़ा कर देना चाहता हूँ। मैं अकेले नहीं, पूरे समाज के साथ राममय होना चाहता हूँ।''[१०] अतः स्पष्ट है कि नागर जी उन सभी धार्मिक मूल्यों के प्रति आस्थावान हैं जो संपूर्ण मानव–समाज की उन्नति एवं हित की संरक्षक है।

नागर जी के लगभग समस्त उपन्यासों में लखनऊ और अवध की सामाजिक एवं भाषिक संस्कृति की अद्‌भूत छटा देखने को मिलती है। भाषा, भावनाओं और विचारों को व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है। अतः इसका प्रौढ़ एवं परिमार्जित होना अत्यंत आवश्यक है। एक परिष्कृत एवं सशक्त भाषा ही साहित्य को पाठकों के नजदीक ले जाती है और चरम पराकाष्ठा पर पहुँचाती है। नागर जी के उत्कृष्ट शिल्पकार एवं भाषाविद् होने के कारण अवध एवं लखनऊ की संस्कृतियों, भावनाओं, परम्पराओं एवं सामाजिक जीवन को व्यक्त करने में पूर्णतः सफल रहे हैं। इस संदर्भ में नरेश सक्सेना का कथन है कि, ''लखनऊ और अवध संस्कृति के वह सच्चे प्रतिनिधि थे और उनके नाम पर निशिचित रूप से साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में कोई बड़ा सम्मान अथवा पुरस्कार स्थापित किया जाना चाहिए।''[११] नरेश सक्सेना का यह कथन उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा को बढ़ा देता है।

नागर जी ने अपने उपन्यासों में खास कर अवध और लखनवी समाज की नज़ाकत को अपने उपन्यासों में पिरोया है। तभी तो मैनेजर पाण्डे भी उनकी इस विशेषता का बखान करते हैं। वे कहते हैं, ''नागर जी की एक सबसे बड़ी विशेषता मुझे लगती है कि उनकी रचनाओं के माध्यम से लखनऊ का समाज उसकी संस्कृति उसका इतिहास जीवंत हो उठता है। कहा जाता है कि चार्ल्स डिकेंस, जो अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार थे, उनकी रचनाओं को पढ़कर विशेष रूप उपन्यासों को पढ़कर लंदन और इंग्लैंड के समाज को जाना जाता है। उसी तरह नागर जी के उपन्यासों को पढ़कर लखनऊ और उसके समाज को जाना जा सकता है।''[१२]

पुष्पा बंसल ने अमृतलाल नागर को भारतीय संस्कृति का चितेरा होने के कारण उन्हें 'भारतीय उपन्यासकार' का दर्जा दिया है जो कि अपरिहार्य है। उनके समस्त उपन्यास भारतीय संस्कृति का आख्यान करते हैं। वे कहती हैं, ''नागर जी के उपन्यास विशुद्ध भारतीय उपन्यास हैं। ये भारतीय उपन्यास इसलिए नहीं है कि हिन्दी में लिखे गए हैं, या भारत के किन्हीं नगरों की गाथा कहते हैं, ये इसलिए भारतीय हैं, क्योंकि, इनके पात्र भारतीय हैं, उनका चिन्तन, उनके विश्वास भारतीय हैं, उनकी भावनाएँ उनकी आस्था–निष्ठा भारतीय हैं तथा उनकी समस्याएँ भारतीय हैं। यहीं इन उपन्यासों की मूलशक्ति है।''[१३]

निष्कर्षतः नागर जी भारतीय समाज एवं संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधि हैं। वे समाज चेता एवं युग द्रष्टा कथाकार हैं जिनमें मानवतावादी मूल्यबोध दृष्टिगत होते हैं। उनके उपन्यासों में स्वस्थ समाज की स्थापना एवं नवीन सांस्कृतिक चेतना हेतु – सेवाभाव, प्रेम, सद्भाव, सहिष्णुता, त्याग, एकता एवं कर्म पर बल दिया है, जिसमें राष्ट्र का उत्थान निहित है। अतः इस बात में कोई शक नहीं कि वे भारतीय संस्कृति के संरक्षक एवं महान् साहित्यकार हैं।

संदर्भ ग्रंथ

१. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य सहचर, पृ॰ २, प्रथम संस्करण १९६५, नैवेद्य निकेतन, वाराणसी

२. मुंशी प्रेमचंद, कुछ विचार, पृ॰ ४, तृतीय संस्करण १९४५, सरस्वती प्रेस, बनारस

३. उत्तर प्रदेश मासिक पत्रिका, अमृतलाल नागर विशेषांक, पृ॰ १४, अगस्त–सितम्बर, २०१५

४. अमृतलाल नागर, बूँद और समुद्र, पृ॰ ७, नया संस्करण २०१५, राजकमल प्रकाशन प्रा॰ लि॰, नई दिल्ली

५. वही, पृ॰ ११०

६. महादेवी वर्मा, भारतीय संस्कृति के स्वर, पृ॰ ५३, प्रथम संस्करण १९८८, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

७. अमृतलाल नागर, एकदा नैमिषराण्ये, अपनी बात से उद्धृत, संस्करण २०१५, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

८. वही, अपनी बात से उद्धृत

९. अमृतलाल नागर, अमृत और विष, पृ॰ २९८, संस्करण २०१३, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

१०. अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृ॰ ३१८, संस्करण २०१३, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

११. उत्तर प्रदेश मासिक पत्रिका, अमृतलाल नागर विशेषांक, पृ॰ १२४, अगस्त–सितम्बर, २०१५

१२. वही, पृ॰ ११३

१३. डॉ॰ पुष्पा बंसल, अमृतलाल नागर : भारतीय उपन्यासकार, पृ॰ ३६, प्रथम संस्करण १९८७, प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली